युगधर्म बननेका अधिकारी कौन ?

अर्वाचीन युगके इस द्वितीय महायुद्धसे मानव-जगत काफी उत्पीड़ित हुआ है। बमों, उड़नबमों और अणुबमोंके द्वारा निरीह और निरपराध जनतासे आबाद अनेक शहर बर्बाद कर दिये गये हैं, बहुतसे छोटे-छोटे देश परस्परके शत्रु बड़े देशोंके बीचमें पड़ जानेके कारण चक्कीके दो पाटोंके बीचमें पड़े हुए अनाजके दानोंकी तरह पिस गये हैं, युद्धरत देशोंके लाखों मनुष्य युद्धके मैदानमें मारे गये हैं और भारत जैसे कृषिप्रधान देशमें भारत सरकारकी गैर जवाबदारीपूर्ण अव्यवस्थाके कारण अर्घ कोटिके करीब मनुष्य अकालके उदरमें समा गये हैं।

यद्यपि आज युद्ध समाप्त हो गया है, परन्तु उसकी छाया आज भी मौजूद है। विजित राष्ट्र विजेता राष्ट्रोंका बदला लेनेकी भावनाके शिकार हो रहे हैं, उन्हें (विजित राष्ट्रोंको) कुचल दिया गया है, परतन्त्र बना लिया गया है और अभी भी दमनकी चक्कीमें पीसा जा रहा है। युद्धापराधियोंकी सूचीमें आये हुए या तो स्वयं आत्मघात कर रहे हैं या फिर उन्हें कानूनी न्यायके आधारपर गोलीसे उड़ाया जा रहा है। बहुतसे देशोंमें शासनकी बागडोर सम्हालने वाली पार्टी अपने ही देशवासियोंको न्यायका ढोंग रच-रच कर खत्म कर रही है और बड़े-बड़े राष्ट्रोंके साम्राज्यवादके शिकार हुए देश युद्धकालमें किये गये वायदोंके आधारपर स्वतन्त्र होनेके लिये छटपटा रहे हैं, उनका हर तरहसे दमन किया जा रहा है।

इस युद्धमें जिन लोगोंके कुटुम्बीजनोंका विनाश हो गया है और जिन्हें जबर्दस्त आर्थिक क्षति उठानी पड़ी है उन लोगोंको तो इसकी याद करके जिंदगी भर रोना ही है। परन्तु युद्धकी समाप्तिसे संपूर्ण मानवजातिमें वही पुराना शांतिका जीवन प्राप्त करनेकी जो आशा उदित हो गयी थी उसकी पूर्तिके आसार नजर नहीं आ रहे हैं। युद्धके दरम्यान जिन कानूनी कठिनाइयोंका उसे सामना करना पड़ रहा था वे कठिनाइयाँ आज भी मौजूद हैं, मँहगाई, चोर बाजार और घूंसखोरीसे छोटेसे लेकर बड़े तक हजारों, लाखों और करोड़ों तककी दौलत कमाने वाले लोग, जिनके सौभाग्यसे ही मानों युद्धकी भट्टी धधक उठी थी, आनन्दविभोर होते हुए आज भी अपनी आदतोंसे बाज नहीं आये हैं। इसके अतिरिक्त बेकारीकी समस्या भी प्रत्येक देशमें धीरे-धीरे घर करती जा रही है।

इन सब बातोंके परिणाम-स्वरूप दुनियाके इस छोरसे उस छोर तक मानवजातिकी एक ही चाह है और एक ही आवाज है कि ऐसे उपाय किये जाने चाहिये कि भविष्यमें कभी भी युद्धका मौका आनेकी सम्भावना जाती रहे। परन्तु दुनियाँकी बड़ी-बड़ी ताकतोंकी साम्राज्य-लिप्सा, विजित राष्ट्रोंका दमन और आपसमें वर्त्ती जानेवाली दाव-पेंचकी अविश्वासपूर्ण नीतिको देखते हुए यह कहना कठिन है कि निकटभविष्यमें ही युद्धका मौका नहीं आ सकता है।

वास्तवमें सम्पूर्ण मानव जाति अब इस किस्मके अमानवीय युद्धोंमें यदि नहीं फँसना चाहती है तो इसे युद्धको प्रोत्साहन देनेवाली स्वार्थपूर्ण दूषित मनोवृत्तियों और प्रवृत्तियोंको छोड़कर धार्मिकताकी ओर कदम बढ़ानेका प्रयत्न करना होगा। विजित राष्ट्र विजेता राष्ट्रों द्वारा बलपूर्वक दबा लिये जाँय, इसकी अपेक्षा विजित राष्ट्रोंके प्रति सहृदयता और प्रेमका व्यवहार करनेकी जरूरत है ताकि विजेता राष्ट्र सम्पूर्ण मानवजातिके प्रति सहृदयता और प्रेमका व्यवहार करना सीख जायँ, शक्तिसे युद्धको दबाया तो जा सकता है परन्तु उसके बीजोंको समूल नष्ट नहीं किया जा सकता है। पहला महायुद्ध शक्तिसे ही तो दबाया गया था। जिससे अल्पकालमें ही हमें उससे भी भयंकर दूसरा युद्ध देखना पड़ा है। धार्मिकताके आधारपर कायम की गयी शान्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही स्थायित्वको प्राप्त हो सकती है। परन्तु धर्म क्या ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। विश्वके रंग-मंचपर धर्मके नामपर हिन्दु, जैन, बौद्ध, पारसी, सिख, मुस्लिम और ईसाई आदि बहुतसे धर्म अपने-अपने भेदों और प्रभेदों सहित देखनेमें आ रहे हैं। क्या इन सभीको धर्म मान लिया जाय या इनमेंसे किसी एकको धर्म नामसे पुकारा जा सकता है ? अथवा इनमेंसे कोई भी धर्म, धर्म नामका अधिकारी नहीं हो सकता है ?

धर्मतत्त्वके सही अर्थको समझनेकी इसलिये जरूरत है कि उल्लिखित तथा कथित धर्मोंके जरिये संपूर्ण मानवजाति अनेक अनिष्टकर वर्गोंमें विभक्त हो गयी है और मानवजातिके ये वर्ग अपने-अपने तथाकथित धर्मको दूसरे तथा कथित धर्मोंकी अपेक्षा न केवल अधिक महत्त्व ही देना चाहते हैं बल्कि अपने तथाकथित धर्मको ही धर्म और दूसरे तथाकथित धर्मोंको अधर्म कहनेमें भी इन्हें संकोच नहीं होता है। और आश्चर्य यह है कि इन तथाकथित धर्मोंमेंसे प्रत्येक धर्मको मानने वाले इन अनेक वर्गोंने धार्मिकताको एक निश्चित दायरेमें बाँध रखा है। हिन्दू धर्मको मानने वाला हिन्दूवर्ग यज्ञ, हवन आदि वैदिक क्रियाकाण्ड और गंगा आदि नदियोंमें स्नान आदिको ही धर्म मानता है, साधुओंका जटा बढ़ाना, पंचाग्नि तप करना और भंग, गाँजा आदि मादक वस्तुओंका सेवन करना आदिको भी वह धर्ममें शुमार करता है। जैनधर्मको माननेवाला जैन वर्ग जैन-धर्मके प्रसारक तीर्थंकरोंकी पूजा वंदना और ध्यान करना पुराणोका ही स्वाध्याय करना और उनमें उपदिष्ट व्रत आदिका अनुष्ठान करना आदिको ही धर्म मानता है। बौद्ध, सिख और पारसी आदि धर्मोंको माननेवाले बौद्ध, सिख और पारसी आदि वर्ग अपने-अपने नियत क्रियाकाण्डोंको ही धर्म समझते हैं, मुस्लिम धर्मका उपासक मुसलमानवर्ग मसजिदमें जाकर नमाज पढ़ना आदिको धर्म मानता है और दूसरे धर्म वालोंको काफिर समझकर तकलीफ देना आदि बातोंको भी धर्मकी कोटिमें शुमार करनेका साहस करता है तथा ईसाई धर्मका धारक ईसाई भाई गिरजामें जाना और अपने धर्म गुरु (पादरी)का उपदेश सुनना आदि बातोंकी ही धर्म मानता है। उक्त प्रत्येक वर्ग अपनी-अपनी उक्त धार्मिकतामें कभी भी अपूर्णता, सदोषता और निरर्थकताका अनुभव नहीं करता है। इस प्रकार उक्त प्रत्येक वर्ग जहाँ अपने तथाकथित धर्मको धर्म और उसको माननेवाली मानवसमष्टिको धर्मात्मा मानता है वहाँ वह अपने इस कथित धर्मको राष्ट्र-धर्म और यहाँ तक कि विश्व धर्म कहनेका दुःसाहस भी करता है।

जहाँ तक मैं सोच सका हूँ उससे इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि उक्त तथाकथित धर्मोंमें कोई भी धर्म, धर्म नहीं है क्योंकि धर्म एक ही हो सकता है, दो नहीं, और अधिक भी नहीं। धर्मका प्रतिपक्षी यदि कोई हो सकता है तो वह अधर्म ही होगा, धर्म-धर्ममें प्रतिपक्षिता कभी भी सम्भव नहीं मानी जा सकती है। दुनियाँके किसी भी छोरपर जाया-जाय, धर्मके प्रचार और रंग-रूपमें कोई भी भेद नजर नहीं आयेगा और यदि भेद नजर आता है तो उसे धर्म समझना ही भूल है। इस प्रकार धर्म जिस तरह सार्वत्रिक है उसी तरह वह शाश्वत भी है, उसकी युगधर्मता अपरिवर्तनीय है, वह हमेशा युगधर्मके रूपमें एक-सा प्रकाशमान होता रहता है। प्रत्येक मनुष्य अपने सीमित बुद्धिबलसे धर्म और अधर्मका विश्लेषण सहजमें ही कर सकता है। इसके लिये बड़े-बड़े ग्रन्थोंको टटोलने व परिश्रमके साथ उनका अध्ययन और मनन करनेकी जरूरत नहीं है और न बड़े-बड़े विद्वानोंकी शरण लेना भी इसके लिये आवश्यक है।

अपने अन्तःकरणमें क्रोध, दुष्ट विचार, अहंकार, छल-कपटपूर्ण भावना, दीनता और लोभवृत्तिको स्थान न देना तथा सरलता, नम्रता और आत्म गौरवके साथ-साथ प्राणिमात्रके प्रति प्रेम, दया और सहानुभूति आदि सद्भावनाओंको जाग्रत करना धर्म है और अपनी वाचनिक और कायिक बाह्य प्रवृत्तियोंमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहवृत्तिको मानवताके धरातलपर यथायोग्य स्थान देते हुए समता और परोपकारको स्थान देना भी धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस धर्मको न तो क्षेत्रीय और कालिक किसी भी मर्यादामें बाँधा जा सकता है और न ऊपर बतलायी गयी हिन्दू, जैन बौद्ध, सिख, पारसी, मुसलमान और इसाई आदि किसी खास समष्टिसे ही इसका ताल्लुक है। यह धर्म हिंदू आदि किसी भी समष्टिके किसी भी व्यक्तिका धर्म हो सकता है। इस धर्मकी प्राप्तिमें ब्राह्मण और भंगी, पुरुष और स्त्री विद्वान और मूर्ख, अमीर और गरीबका भेद कहींपर भी कभी भी बाधक नहीं हो सकता है और इसकी उपयोगिता कहीं भी, कभी भी, कैसी भी हालत क्यों न हो, मानवसमाजके लिये बनी हुई है।

हम देखते हैं कि उल्लिखित तथाकथित धर्मोंके आधारपर अपनेको धार्मिक समझनेवाली किसी भी समष्टिमें सामूहिकरूपसे यह धर्म नहीं पाया जाता है। प्रत्येक समाजमें स्वार्थका पोषण सर्वोपरि है और इसके लिये छल-कपट, बेईमानी, असत्यताका व्यवहार और भाई-भाई तथा पिता-पुत्रके लड़ाई-झगड़े तो जीवनके अनिवार्य अंग बन गये हैं। इन सबके विद्यमान रहते हुए भी मनुष्य केवल मनुष्य बना रहता है बल्कि वह धर्मात्मा भी बना रहता है। और तो क्या, चोरबाजार और घूँसखोरी जैसे राक्षसी कृत्य करनेवाले तथा उचित-अनुचित तरीकों द्वारा निर्दयतापूर्वक व्यापकरूपसे मानवसमष्टिका संहार करनेवाले युद्धोंके प्रवर्तक और संचालक लोग भी अपनेको धर्मात्मा ही मानते हैं। हम पूछते हैं कि इस विश्वयुद्धको क्या एक ही धर्मके माननेवालोंके बीचका युद्ध नहीं कहा जा सकता है और आज कौनसी तथाकथित धार्मिक समाज गर्वके साथ इस बातका दावा कर सकती है कि उसके अन्दर चोरबाजार और घूँसखोरी जैसे राक्षसी कृत्य करनेवाले व्यक्ति अधिकाधिकरूपमें मौजूद नहीं हैं?

तात्पर्य यह है कि धार्मिकताके आधारपर निर्मित हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, मुसलमान और ईसाई आदि सभी समष्टियोंमें जब न केवल अधर्म ही बल्कि मनुष्यताका भी अभाव मौजूद है तो उन्हें धार्मिक समष्टि और उनकी उस धार्मिकताको धर्म नामसे कैसे पुकारा जा सकता है? लेकिन इस सिलसिलेमें यहाँपर एक और प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि जब उल्लिखित तथाकथित धर्म धर्म नहीं हैं तो क्या वे सब अधर्म हैं? और यदि वे सब अधर्म हैं तो उन्हें कैसे नष्ट किया जा सकता है?

इस विषयमें मेरी मान्यता है कि उल्लिखित तथाकथित धर्म यदि धर्म नहीं हैं तो वे सर्वथा अधर्म भी नहीं हैं। परन्तु इस सबके परिष्कृत रूपोंको धर्म-प्राप्तिके उपायोंके रूपमें स्वीकार किया जाना चाहिये और इसके परिष्कृतरूपोंको मैं हिन्दू संस्कृति, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, सिख संस्कृति, पारसी संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और ईसाई संस्कृति आदि नाम देना उपयुक्त समझता हूँ।

प्रत्येक संस्कृतिको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तत्त्वज्ञान और दूसरा आचार। इन दोनों विभागोंसे सजी हुई संस्कृतिको मैं धर्म न मानकर उल्लिखित धर्मकी प्राप्तिका साधन मानता हूँ। मेरा तो यह निश्चित विचार है कि संस्कृतिको धर्मका साधन न मानकर उसे ही धर्म मान लेनेसे प्रत्येक संस्कृतिके अन्दर ढोंग, कई किस्मके अनर्थकारी विकार और रूढ़िवादको प्रश्रय मिला है तथा मनुष्यमें अहंकार, पक्षपात, हठ और परस्पर विद्वेष तथा घृणाको अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन मिला है। अपने धर्मको और अपनेको सच्चा और ईमानदार तथा दूसरोंके धर्मोंको और दूसरोंको मिथ्या और बेईमान समझनेकी जो प्रवृत्ति मानवप्रकृतिमें पायी जाती है उसका आधार भी धर्मकी साधनभूत संस्कृतिको ही धर्म मान लेनेकी हमारी मान्यता है। यदि हम इस मान्यताको छोड़ दें और संस्कृतिको धर्मप्राप्तिका साधन समझकर उसके जरिये अपने जीवनको धार्मिक जीवन बनानेका प्रयत्न करने लग जायें, तो निश्चित ही वर्तमान प्रत्येक संस्कृतिके अन्दरसे ढोंग, अनर्थकारी विकार और रूढ़िवादका खात्मा हो जायगा तथा किसी भी संस्कृतिको अपनानेवाला मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार, पक्षपात, हठ और परस्पर-विद्वेष तथा घृणाका शिकार न हो सकेगा। प्रत्येक मनुष्यके अन्दरसे अपने धर्मको और अपनेको सच्चा और ईमानदार तथा दूसरोंके धर्मोंको और दूसरोंको मिथ्या और बेईमान समझनेकी प्रवृत्ति उठ जायगी।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी अपने ऐहिक जीवनमें भी सुखसे ही रहना चाहता है। मनुष्य चूँकि सामाजिक प्राणी है अर्थात् उसका जीवन पशुओं जैसा आत्मनिर्भर न होकर, प्रायः सामाजिक सहयोगपर ही निर्भर है। इसलिये संबद्ध मानवसमष्टिका ऐहिक जीवन जबतक सुखी नहीं हो जाता है तबतक संबद्ध मानव-व्यक्तिका भी ऐहिक जीवन सुखी नहीं हो सकता है। संबद्ध मानवसमष्टिका ऐहिक जीवन सुखपूर्ण बने, इसके लिये मानवव्यक्तिके जीवनमें ऊपर बतलाई गयी अतरंग और बाह्य धार्मिकताको लानेकी जरूरत है।

मानवजीवनमें उक्त धार्मिकताको लानेके लिये ही भिन्न-भिन्न महापुरुषोंने अपने-अपने समयमें ऊपर बतलायी गयी हिन्दू, जैन आदि भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंको जन्म दिया है अर्थात् वर्तमानमें हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, मुस्लिम और ईसाई आदि जितनी संस्कृतियाँ पायी जाती हैं इन सबका उद्देश्य उन-उन संस्कृतियोंके उपासक मनुष्योंको पूर्वोक्त प्रकारसे धार्मिक बनाना ही है। लेकिन संस्कृतिको ही धर्म मान लेनेसे जब केवल भिन्न-भिन्न संस्कृतिकी उपासना मात्रसे मनुष्य धर्मात्मा माना जा सकता है तो उसे अपने जीवनमें उक्त धार्मिकताके लानेकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। इसीका यह परिणाम है कि एक ओर तो प्रत्येक संस्कृति ढोंग, कई किस्मके अनर्थकारी विकार और रूढ़िवादसे परिपूर्ण होते हुए भी इन विकारोंको नष्ट करनेकी ओर उसके उपासकोंका यथायोग्य ध्यान नहीं जा रहा है और दूसरी ओर अपनेको धर्मात्मा तथा सच्ची और सर्वहितकारी संस्कृतिकी उपासक समष्टिका अंग मानते हुए भी उनमें (प्रत्येक संस्कृतिके उपासक व्यक्तियोंमें) मानवताको कुचलने वाली स्वार्थपूर्ण असीमित दुराकांक्षाएँ और दुष्प्रवृत्तियाँ बे-रोक-टोक बढ़ती ही जा रही हैं। इसलिये आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक संस्कृतिकी उपासक समष्टि और उस समष्टिका अंगभूत प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी संस्कृतिको धर्म न मानकर धर्मका साधन समझने लग जाय। इसका यह परिणाम होगा कि प्रत्येक संस्कृतिके उपासक समाज और इसका अंगभूत व्यक्ति अपनेको धर्मात्मा और अपनी संस्कृतिको सच्ची और उपयोगी सिद्ध करनेके लिये अपने जीवनमें पूर्वोक्त प्रकारकी धार्मिकताको लानेका ही प्रयत्न करने लगेगा और जिस समाजका लक्ष्य इस ओर न होगा उसकी संस्कृति निश्चित ही केवल इतिहासके पत्रोंमें रह जायगी।

मेरी मान्यताके अनुसार वर्तमान सभी संस्कृतियाँ मानवसमाजके लिये उपयोगी हैं। परन्तु जैन संस्कृतिको मैं उपयोगी होनेके साथ-साथ अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक भी मानता हूँ। उसका तत्त्वज्ञान और उसका आचार अधिक-से-अधिक वास्तविकताको लिये हुए है।

इसलिये दूसरी संस्कृतियोंकी अपेक्षा जैन संस्कृति अधिक स्थायी और अधिक व्यापक बनायी जा सकती है। यदि इस विश्वयुद्धके दौरानमें जैन समाज अपनी मनोवृत्तिका संतुलन बनाये रखता और दूसरे सामाजोंके साथ व्यापारमें चोरबाजारको स्थान नहीं देता तो जैन संस्कृति निश्चित ही अपने लायक स्थानपर खड़ी दिखाई देती। यह जैन संस्कृतिका उत्थान चाहने वालोंके लिये असीम दुःखका विषय है और सम्पूर्ण जैन समाजके लिये लज्जाका विषय है कि व्यापारी जैन समाजने जैन संस्कृतिको आज इस रूपमें कलंकित किया है। क्या यह आशा करना उचित न होगा कि जैन संस्कृतिको युगका धर्म (संस्कृति) बनानेके लिये जैन समाज ही पहले अपनेको युगका समाज बनायेगा।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org